प्रश्नव्याकरण सूत्र

श्री सौभागमल जैन

'प्रश्नव्याकरण' सूत्र का प्राचीन रूप लुप्त हो गया है। उसमें प्रश्नोत्तर शैली में नन्दीसूत्र, समवायांग आदि के अनुसार जो विषयवस्तु थी, वह अब उपलब्ध नहीं है। उसके स्थान पर दो श्रुतस्कन्धों में अब हिंसा आदि पाँच आस्रवों एवं अहिंसा आदि पाँच संवरों का वर्णन उपलब्ध होता है। हिंसा, मृषावाद, चौर्य, मैथुन, परिग्रह तथा इनके विपरीत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह का इस सूत्र में गम्भीर, विशद एवं हृदयग्राही विवेचन हुआ है। वरिष्ठ स्वाध्यायी एवं व्याख्याता श्री सोभागमल जी जैन ने इस आलेख में प्रश्नव्याकरण सूत्र की समस्त विषयवस्तु को समेट कर परोसने का प्रयत्न किया है। —**सम्पादक**

जैन धर्म अपने स्वतंत्र अस्तित्व वाला स्वतंत्र धर्म है जिसका अपना स्वयं का दर्शन है एवं मान्य सिद्धान्त हैं। चौबीस तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट और उन्हीं उपदेशों के आधार पर रचा गया साहित्य ही जैन धर्म में प्रमाणभूत है। जिस काल में जो भी तीर्थंकर होते हैं, उन्हीं के उपदेश, आचार—विचार आदि तत्कालीन समाज में प्रचलित होते हैं। इस दृष्टि से भ. महावीर स्वामी अंतिम तीर्थंकर होने से वर्तमान में उन्हीं के उपदेश अंतिम उपदेश हैं, वे ही प्रमाण भूत हैं।

भ. महावीर ने जो उपदेश दिया, उसे गणधरों ने सूत्रबद्ध किया, इसी कारण अर्थ रूप शास्त्र के कर्ता भ. महावीर और शब्द रूप शास्त्र के कर्ता गणधर थे। ऐसा विद्वान आचार्यों ने वीतराग भगवंतों के कथनानुसार एक मत से स्वीकार किया है। आगम या शास्त्र प्रारंभ में लिखे हुए नहीं थे, अपितु कण्ठस्थ थे और वे स्मृति द्वारा सुरक्षित रखे जाते थे। गुरु द्वारा अपने शिष्य को और शिष्य द्वारा प्रशिष्य को श्रुतज्ञान प्रदान करने की परम्परा प्रचलित थी। शिष्य अपने गुरु से सुनकर सीखे गये ज्ञान को सुरक्षित रखते थे। अतः शास्त्रों के लिए श्रुत, स्मृति, श्रुति आदि नाम प्राचीन काल में प्रचलित रहे हैं। वर्तमान में 'आगम' शब्द जैन परम्परा में व्यापक रूप से प्रचलित है जो पूर्ण सार्थकता लिये हुए है। इस संदर्भ में 'आगम' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए महापुरुषों ने बताया है—१. विधिपूर्वक जीवादितत्त्वों को समझाने वाला शास्त्र आगम है। २. **आप्तवचनमागमः** इसको स्पष्ट करते हुए बताया है कि ''आप्त वे हैं जिनके दोषों का क्षय हो चुका है, अतः दोषमुक्त की वाणी आगम है।''

यहाँ प्रतिपाद्य विषय 'प्रश्नव्याकरण सूत्र' है। अतः उस पर चिंतन अभीष्ट है। प्रश्नव्याकरण सूत्र को द्वादशांगी में दसवां स्थान प्राप्त है।

सूत्र का नाम, अर्थ एवं स्वरूप— समवायांग, नंदी और अनुयोगद्वार सूत्र में 'प्रश्नव्याकरण' के लिए 'पण्हावागरणाइं' शब्द का प्रयोग हुआ है। सांदर्भिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र के उपसंहार में 'पण्हावागरणं' का प्रयोग भी उपलब्ध है। ठाणांग सूत्र के दसवें ठाणे में 'पण्हावागरणदसा' का उल्लेख है। दिगंबर साहित्य में भी 'पण्हवायरण' शब्द की जानकारी मिलती है। अतः समग्र दृष्टि से संस्कृत में 'प्रश्नव्याकरण' नाम ही अधिक प्रचलित है। यह समासयुक्त पद है, जिसका अर्थ होता है 'प्रश्नों का व्याकरण'। किन्तु इसमें किन प्रश्नों का व्याकरण या व्याख्यान किया गया था एतद् विषयक श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं के मान्य ग्रन्थों जैसे—अंगपण्णत्ति, धवलाग्रन्थों एवं ठाणांग, समवायांग, नंदीसूत्र आदि ग्रन्थों में जिस विषयसामग्री का उल्लेख मिलता है उससे वर्तमान में उपलब्ध 'प्रश्नव्याकरण सूत्र' का मेल नहीं बैठता है।

समवायांग सूत्र में इस सूत्र का परिचय देते हुए सूत्रकार ने लिखा है कि "इस सूत्र में १०८ प्रश्न, १०८ अप्रश्न और १०८ प्रश्नाप्रश्न हैं। विद्या में अतिशय प्राप्त किए हुए नागकुमार, सुवर्ण कुमार अथवा यक्षादि के साथ साधकों के जो दिव्य संवाद हुआ करते थे, उन सब लब्धियों, दिव्य विद्याओं, अतिशय युक्त प्रश्नों आदि विषयों का निरूपण किया गया है। इस सूत्र में १ श्रुतस्कंध, ४५ उद्देशन काल, ४५ समुद्देशन काल, संख्यात सहस्र पद, संख्यात अक्षर, परिमित वाचनाएँ, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात ही प्रतिपत्तियाँ हैं। नंदी सूत्र में भी इसी से मिलता-जुलता उल्लेख प्राप्त होता है। ठाणांग सूत्र में इसके १० अध्ययनों की संख्या एवं उन अध्ययनों के नाम उल्लिखित हैं। दिगंबर परंपरा के ग्रंथ अंगपण्णत्ति, धवला और राजवार्तिक आदि में भी ठाणांग सूत्र से मिलता-जुलता वर्णन प्राप्त होने का उल्लेख विवेचक आचार्यों द्वारा अपने ग्रंथों में किया गया है।

दोनों परम्पराओं के उपर्युक्त मान्य ग्रंथों में प्रश्नव्याकरण सूत्र की जिस विषय सामग्री का उल्लेख किया गया है उस सामग्री का वर्तमान में उपलब्ध सूत्र में श्रुत स्कंध के उल्लेख के अतिरिक्त तनिक भी समानता नहीं है। इस संबंध में वृत्तिकार अभयदेवसूरि ने स्पष्टीकरण देते हुए बताया है कि "इस समय का कोई अनधिकारी व्यक्ति सूत्र में वर्णित विद्याओं का दुरुपयोग न कर बैठे, इस आशंका से वे सब विद्याएँ इस सूत्र में से निकाल दी गईं और उनके स्थान पर आस्रव और संवर के वर्णन का समावेश कर दिया गया।"

एक विवेचनकार के विचारानुसार "आगम के मूल पाठ से ऐसा प्रकट होता है कि वर्णित चमत्कार पूर्ण अत्यंत निगूढ एवं मनोगत प्रश्नों के प्रतीतिकारक वास्तविक उत्तर देने के लिए अनेक विद्याएँ इस अंग में विद्यमान थीं, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में जैन सिद्धान्त के अनुरूप इन आरंभ-समारंभ पूर्ण विद्याओं से सर्वथा बचते हुए धर्म के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभ्युदय हेतु अपवाद रूप से ही इनका उपयोग किया जाता होगा। किन्तु काल के प्रभाव से परिवर्तित परिस्थितियों में पूर्वाचार्यों को उन विद्याओं के दुरुपयोग की आशंका होने से उन विद्याओं को इस अंग से निकाल दिया गया हो।'' वस्तु स्थिति की वास्तविकता क्या रही होगी, यह केवलीगम्य है। किन्तु इतना अवश्य है कि वर्तमान उपलब्ध सूत्र में ऐसी कोई विषय सामग्री उपलब्ध नहीं होने से प्रश्नव्याकरण का सामान्य अर्थ जिज्ञासा और समाधान ही ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। उपलब्ध वर्ण्य विषय के आधार पर धर्म और अधर्म रूप विषयों की चर्चा से युक्त सूत्र ही प्रश्न व्याकरण सूत्र है, ऐसी मूर्धन्य विद्वद्वर्ग की मान्यता है।

सूत्र रचनाकार, भाषा और शैली– ''जंबू! इणमो अण्हय— संवर विणिच्छयं पवयणस्स णीसंदं। वोच्छामि णिन्छयत्थं सुहासियत्थं महेसीहिं।'' उक्त गाथा में आर्य जम्बू को संबोधित किया गया है। अत: टीकाकारों ने इस सूत्र को उनके गुरु सुधर्मा स्वामी द्वारा निरूपित अंग सूत्र के रूप में स्वीकार किया है। प्रस्तुत आगम के अंतर्गत सम्पूर्ण विषय वस्तु का कथन आर्य सुधर्मा द्वारा जम्बू स्वामी को संबोधित करते हुए उपलब्ध होता है, अत: रचनाकार के संबंध में शंका निर्मूल है। प्रश्नव्याकरण सूत्र की भाषा अर्द्धमागधी प्राकृत है। भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग में ली गई भाषा एवं शब्दों की योजना प्रभावपूर्ण है। जैसे हिंसा आस्रव का एक रूप है, जिसमें क्रूरता एवं भयानकता के भाव रहे हुए हैं जिसका बोध कराने के लिए कर्कश एवं रौद्र शब्दों का प्रयोग होना चाहिए, इसमें उस रूप की विद्यमानता परिलक्षित होती है। दूसरी ओर अहिंसा, सत्य आदि संवर के स्वरूप वर्णन हेतु कोमल पदों का उपयोग अपेक्षित है, प्रश्नव्याकरण में इस वैशिष्ट्य की भी प्रचुरता है। इसका प्रत्यक्ष एवं मूर्त रूप इसके अध्ययन से भलीभाँति प्रकट होता है।

सूत्र का वर्ण्य विषय– इस सूत्र में आस्रव एवं संवर का मौलिक रूप में विशद चिन्तन एवं वर्णन किया गया है। वैसे तो आस्रव-संवर की चर्चा अन्य आगमों में भी हुई है, किन्तु 'प्रश्नव्याकरण सूत्र' तो इन्हीं के वर्णन का शास्त्र है। इनका जितना क्रमबद्ध और व्यवस्थित विशद वर्णन इसमें किया गया है उतना अन्यत्र कहीं नहीं हुआ है। पूज्य श्री अमोलकऋषि जी म.सा., पूज्य श्री घासीलाल जी म.सा., पूज्य श्री मधुकरमुनि जी म.सा. प्रभृति सन्तों ने इसका विवेचन कर वर्ण्य विषय को सुबोधता प्रदान की है। साहित्य मनीषी आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. ने इस पर टीका ग्रंथ की रचना की है, जिसके द्वारा प्रतिपाद्य विषय के आशय को सरल सुबोध भाषा में स्पष्ट कर उसकी दुरूहता दूर करते हुए जन-सामान्य के लिए बोधगम्य एवं उपयोगी बनाया है।

उक्त सूत्र को चरम तीर्थंकर भ. महावीर द्वारा प्रतिपादित द्वादशांगी के दसवें अंग के रूप में स्थान प्राप्त है। सूत्र के उपसंहार में सूत्रकार ने '' इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न व्याकरण सूत्र में एक श्रुतस्कंध है, दस अध्ययन हैं।'' ऐसा कथन किया है। किन्तु वर्तमान में उपलब्ध यह सूत्र मुख्य रूप से २ भागों में विभक्त है—१. **प्रथम खण्ड**— इसमें समाविष्ट विषय वस्तु आस्रव द्वार और २. **द्वितीय खण्ड**—इसकी विषय सामग्री संवर द्वार के रूप में निरूपित है। प्रथम विभाग में हिंसा आदि पाँच आस्रवों का और दूसरे भाग में अहिंसा आदि पाँच संवरों का वर्णन किया गया है।

आस्रव और संवर इन दोनों तत्त्वों की नव तत्वों में गणना की गई है किसी भी मोक्षार्थी आत्मा के लिए इनका ज्ञान आवश्यक ही नहीं, अपितु साधना-मार्ग पर आगे बढ़ने हेतु अनिवार्य है। आस्रव तत्त्व जहाँ जन्म—मरण रूप भव-परम्परा की वृद्धि का मुख्य कारण है वहीं संवर तत्त्व शुद्ध आत्म दशा (मुक्ति) प्राप्ति का मुख्य हेतु है। किन कारणों से कर्मों का बंध होता है और किन उपायों से कर्मों के बंध का निरोध किया जा सकता है, साधक के लिए इस तथ्य को हृदयंगम कर चलने पर ही इष्ट साध्य की प्राप्ति संभव हो सकती है। इन्हीं प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्गों को इसमें स्पष्ट किया है।

सूत्र का प्रारम्भिक परिचय— जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रस्तुत शास्त्र में हिंसादि पाँच आस्रवों और अहिंसा आदि पाँच संवरों का कुल १० अध्ययनों में वर्णन है। अध्ययन के वर्ण्य विषय के अनुरूप सार्थक नामों का उल्लेख एवं उनके परिणामों का विस्तार से वर्णन उपलब्ध है। उदाहरणार्थ-- हिंसा आस्रव के अंतर्गत प्राणवध एवं उसका स्वरूप, उसके भिन्न-भिन्न नाम, वह जिस तरह किया जाता है एवं उसके कुफल भोगने आदि का किया गया वर्णन पाठकों एवं स्वाध्यायियों के समक्ष उसका साक्षात् दृश्य उपस्थित करता है। हिंसा-आस्रव के सदृश ही शेष चारों आस्रवों का विशद विवेचन उपलब्ध है। इस प्रकार प्रथम श्रुतस्कंध के पाँच अध्ययनों में क्रमशः हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म और परिग्रह आदि आंतरिक विकार रूप रोगों के स्वरूप, उनके द्वारा होने वाले दुःखों, यथा- वध, बंधन, कुयोनियों, नीच कुलों में जन्म-मरण करते हुए अनंतकाल तक भव-भ्रमण का चित्रण हुआ है।

इसके विपरीत द्वितीय श्रुतस्कंध में इन उपर्युक्त रोगों से निवृत्ति दिलाने के उपायों का वर्णन है। इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के स्वरूप और उनके सुखद प्रतिफलों का निरूपण किया गया है।

प्रत्येक अध्ययन के प्रतिपाद्य विषय का सार प्रश्नव्याकरण सूत्र पर रचित व्याख्या-ग्रंथों के अनुशीलनोपरांत उपलब्ध तथ्यों के आधार पर अध्ययनों के क्रम में प्रस्तुत है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम श्रुत-स्कंध

प्रथम अध्ययन–प्रथम आस्रव द्वार 'हिंसा'

इस अध्ययन में प्राणवध रूप प्रथम आस्रव 'हिंसा' का वर्णन है वीतराग जिनेश्वर देव ने हिंसा को पाप रूप अनार्य कर्म और दुर्गति में ले जाने वाला बताया है। इसके अंतर्गत प्राण वध का स्वरूप, प्राणवध के कलुष फल के निर्देशक ३० नाम, पापियों का पाप कर्म जिसमें असंयमी, अविरति, मन-वाणी तथा काय के अशुभ योग वाले जीवों द्वारा जलचर, स्थलचर, चतुष्पद, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प, नभचर आदि त्रस जीवों के अस्थि, मांस, चर्म एवं अंगों की प्राप्ति कर शरीर, भवन आदि की शोभा बढ़ाने हेतु की जाने वाली हिंसा का निरूपण, पृथ्वीकायिक, अप्, तेजस्, वायु, वनस्पति आदि स्थावरकायिक जीवों की सकारण व अकारण की जाने वाली हिंसा का निरूपण एवं हिंसक जीवों का दृष्टिकोण, हिंसक जन एवं जातियों में ५० प्रकार के अनार्यों का वर्णन, हिंसा के क्रोधादि अंतरंग कारण, धर्म–अर्थ–काम के निमित्त से की जाने वाली सप्रयोजन एवं निष्प्रयोजन हिंसा, हिंसकों के उत्पत्ति स्थान, नरक के दुःखानुभव का निरूपण जिसके अंतर्गत नारकों को दिया जाने वाला लोमहर्षक दुःख, नारक जीवों की करुण पुकार, परमाधार्मिक देवों को दिये जाने वाले घोर दुःख एवं दी जाने वाली विविध पीड़ाओं एवं यातनाओं के प्रकार, यातनाओं में प्रयुक्त शस्त्रों के प्रकार, परस्पर में वेदनाओं को उत्पन्न करते हुए नारकियों की दशा व उनके पश्चात्ताप का निरूपण, तिर्यंच योनि के दुःखों का निरूपण, चतुरिन्द्रिय से एकेन्द्रिय और सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, प्रत्येक, साधारण शरीरी जीवों के दुःखों और मनुष्य भव के दुःखों का सविस्तार वर्णन किया गया है तथा बताया गया है कि हिंसा रूप पापकर्म करने वाले प्राणी नरक और तिर्यंच योनियों में तथा कुमानुष अवस्था में भटकते हुए अनंत दुःख प्राप्त करते रहते हैं।

मूल में हिंसा के फल विपाक को अल्प सुख और बहुत दुःख का कारण कहा गया है। इसका आशय यह है कि हिंसक को हिंसा करते समय प्रसन्नता होती है। शिकारी शिकार के प्राणों का हरण करके हिंसाजन्य सुख का अनुभव करता है, जो सुखाभास मात्र है, क्योंकि उसके पीछे घोर दुःख रहा हुआ है। सुख की यह क्षणिक अनुभूति जितनी तीव्र होती है, भविष्य में उतने ही तीव्र दुःखों का अनुभव कराती है। इसका फल विपाक महाभय वाला, भयंकर, कठोर और असाता रूप है जो पल्योपम और सागरोपम आदि अनेक सहस्रों वर्षों में भोगते–भोगते छूटता है, बिना भोगे कभी भी छुटकारा नहीं हो सकता है। इसलिए इस प्राणवध का 'ज्ञ' परिज्ञा स्वरूप जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाव, अध्ययन का उपसंहार करते हुए सूत्रकार द्वारा फरमाये गये हैं।

द्वितीय अध्ययन– द्वितीय आस्रव द्वार 'मृषावाद'

इस अध्ययन में सर्वप्रथम मृषावाद का स्वरूप बताया गया है जिसे अलीक वचन अथवा मिथ्याभाषण भी कहा गया है। अलीक वचन का निरूपण करते हुए शास्त्रकार फरमाते हैं कि असत्य दुर्गति में ले जाता है एवं संसार-परिभ्रमण की वृद्धि कराने वाला है। असत्य वचनों का प्रयोग ऐसे मनुष्य ही करते हैं जिनमें गुणों की गरिमा नहीं होती, जो क्षुद्र, तुच्छ या हीन होते हैं, जो अपने वचनों का स्वयं मूल्य नहीं जानते, जो प्रकृति में चंचलता होने से बिना सोचे समझे बोलते हैं। धार्मिक दृष्टि से नास्तिकों, एकांतवादियों और कुदर्शनियों को भी मृषाभाषी बताया गया है। ऐसे वचन स्व और पर के लिए अहितकर होते हैं। अत: संतजन और सत्पुरुष असत्य का कदापि सेवन नहीं करते, क्योंकि असत्य वचन पर-पीड़ाकारक होते हैं और पीड़ाजनक वचन, तथ्य होने पर भी सत्य नहीं कहलाते हैं।

इस आस्रव द्वार के अंतर्गत मृषावाद के ३० नामों का उल्लेख करने के साथ मृषावादी का पूर्ण परिचय देते हुए क्रोधी, लोभी, भयग्रस्त, हास्यवश झूठ बोलने वाले, चोर, भाट, जुआरी, वेषधारी मायावी, अवैध माप—तौल करने वाले, स्वर्णकार, वस्त्रकार, चुगलखोर, दलाल, लोभी, स्वार्थी आदि के असत्य बोलने का वर्णन है। इनके अतिरिक्त इसमें अनेक विषयों का वर्णन है, यथा— मृषावाद के चार कारण, मृषावादी नास्तिक वादियों के मत का निरूपण, शून्यवाद, स्कंधवाद के अन्तर्गत रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार वर्णन। वायुजीव वाद असद्भाववादी मत, प्रजापति का सृष्टि सर्जन, ईश्वर सृष्टि, एकात्मवाद, अकर्तृत्ववाद, यदृच्छावाद, स्वभाववाद, विधिवाद, नियतिवाद, पुरुषार्थवाद, कालवाद का निरूपण। झूठा दोषारोपण करने वाले निन्दकों, पाप का परामर्श देने वाले जीवघातक हिंसकों के उपदेश—आदेश, युद्धादि के उपदेश—आदेश रूप मृषावाद का सविस्तार विवेचन हुआ है तत्पश्चात् मृषावाद के भयानक फल का दिग्दर्शन कराते हुए बताया है कि इसका फलविपाक सुख वर्जित और दु:ख बहुल है, प्रचुर कर्म रूपी रज से भरा हुआ है, महाभंयकर, दु:खकर, अपयशकर, दारुण और कठोर है। वैरकर, अरति, रति, राग—द्वेष व मानसिक संक्लेश उत्पन्न कराने वाला है। यह अधोगति में निपात व जन्म-मरण का कारण है। यह चिरपरिचित एवं अनुगत है, अत: इसका अंत कठिनता से एवं परिणाम दु:खमय ही होता है।

अंत में उपसंहार करते हुए सूत्रकार ने कथन किया है कि इस अलीक वचन को जो तुच्छात्मा, अति नीच एवं चपल होते हैं, वे ही बोलते हैं, जिसका फल विपाक जीव पल्योपम एवं सागरोपम प्रमाण काल तक भोगता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है तभी जाकर छुटकारा पाता है।

तृतीय अध्ययन--तृतीय आस्रव द्वार 'अदत्तादान'

मृषावाद और अदत्तादान में घनिष्ठ संबंध होना निरूपित करते हुए तीसरे आस्रव द्वार के रूप में सूत्रकार ने तृतीय अध्ययन में अदत्तादान का वर्णन किया है। सर्वप्रथम अदत्तादान के स्वरूप का निरूपण करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं कि चोरी चिंता एवं भय की जननी तथा संतजनों द्वारा विनिन्दित है। यह चौर्यकर्म परकीय पदार्थ का हरण रूप है, हृदय को जलाने वाला, मरण भय रूप, कलुषित, मलिन, लोभ का मूल, अधोगति की ओर ले जाने वाला, अनार्य पुरुषों द्वारा आचरित है। यह करुणाहीन कृत्य है। यह भेदकारक, अप्रीतिकारक, रागद्वेष की बहुलता वाला, पश्चात्ताप का कारण, दुर्गति में ले जाने एवं भवभ्रमण कराने वाला है। यह चिर--परिचित की तरह आत्मा के साथ लगा हुआ है और अंत में इसका परिणाम अत्यंत दुःखदायी है।

इसके बाद अदत्तादान के ३० नामों का निरूपण, चौर्य कर्म के विविध प्रकार, परधन में लुब्ध राजाओं के आक्रमण व संग्राम का वर्णन है 'जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई' की उक्ति के अनुसार अत्यधिक लालसा वाले राजाओं द्वारा युद्ध के लिए शस्त्र सज्जा, युद्ध स्थल की बीभत्सता का निरूपण, चोरी के उपकरणों और १८ प्रकार के चौर्य प्रकारों, छोटे—बड़े सभी तरह के चोरों— वनवासी चोर, समुद्री डाके डालने वाले, ग्रामादि लूटने वाले, तस्करी का कार्य करने वाले आदि का वर्णन है फिर चोरी के अपराध में दिये जाने वाले कठोर दण्ड- ताड़न, तर्जन, छेदन, भेदन, अंग-त्रोटन, बंधन, कारावास एवं बंदीगृह में होने वाले दुःख, चोरों को दी जाने वाली भीषण यातनाओं आदि का सविस्तार उल्लेख है। अदत्तग्राही चोरी का पाप और परलोक में दुर्गति की परम्परा निरूपित है। जीव ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्मों से बंध दशा को प्राप्त कर संसार सागर में रहते हैं, अतः संसार सागर के स्वरूप का निरूपण है। किस प्रकार के अदत्तग्राही चोरों को किस प्रकार के फल मिलते हैं आदि विषय-बिंदुओं के माध्यम से विपुल सामग्री का विस्तार से इस अध्ययन में समावेश किया गया है।

उपसंहार के अन्तर्गत बताया गया है कि यह अदत्तादान अल्परूपेण सुखजनक एवं भयंकर से भयंकर दुःख प्रदाता, बड़ा भीषण और कठोर तथा असातावेदनीय कर्म स्वरूप है। साथ ही पर-धन-अपहरण, दहन, मृत्यु, भय, मलिनता, त्रास एवं लोभ का मूल है, जो चिरकाल से प्राणियों के साथ लगा हुआ है एवं इसका फल विपाक अत्यंत कटुक होने से इसका अंत अत्यन्त कठिनाई से अर्थात् पल्योपम व सागरोपम प्रमाण-काल में होने का कथन सूत्रकार द्वारा किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ अध्ययन- चतुर्थ आस्रव द्वार 'अब्रह्म'

चौथे आस्रव द्वार अब्रह्मचर्य की प्ररूपणा करते हुए भगवान ने उसका स्वरूप फरमाया है कि यह संसारस्थ प्राणियों द्वारा प्रार्थनीय, कमनीय एवं इच्छित है जो प्राणियों को फंसाने के लिए कीचड़ सदृश, फिसलन युक्त, बांधने के लिए पाश एवं फंसाने के लिए जाल सदृश है। जो तीन वेदरूप चिह्न युक्त, तप–संयम–ब्रह्मचर्य एवं चारित्र का विघातक, प्रमाद का मूल, निन्दितों द्वारा सेवनीय, सज्जनों-पापविरतों द्वारा त्याज्य, तीनों लोकों में अवस्थिति, जरा-मरण, रोग-शोक की बहुलता, वध–बंध -विघात द्वारा भी जिसका अंत नहीं, मोह का मूल कारण, चिरपरिचित, अनुगत एवं दुरन्त है, जिसका फल अत्यंत ही दुःखप्रद होता है।

इसके अतिरिक्त अब्रह्म के ३० गुणनिष्पन्न नाम एवं लक्षण, मोह मुग्धमति देव–देवी, चक्रवर्ती के विशिष्ट भोग, यथा– राज्य विस्तार, विशेषण, शुभ लक्षण, ऋद्धि, निधियाँ, रत्न आदि का निरूपण, बलदेव वासुदेव के भोग, माण्डलिक राजाओं के भोग, युगलिकों आदि अकर्म भूमिज ३२ लक्षण युक्त मनुष्यों के भोग, एवं मनुष्यिणियों की शरीर सम्पदा आदि अनुपम अपार भोग सामग्री को दीर्घकाल तक भोग कर भी बिना तृप्ति के काल कवलित हो जाने, मैथुनासक्ति के कारण हुए अनेक जनक्षयकारी युद्धों का उल्लेख, परस्त्री में लुब्ध जीवों की दुर्दशा, अब्रह्मचर्य का दुष्परिणाम आदि विविध विषयों का इसके अंतर्गत अत्यंत मार्मिक एवं तलस्पर्शी विस्तृत चित्रण प्रस्तुत किया गया है। जो भव्य जीवों के लिए चिंतनीय एवं मननीय है।

अंत में इस द्वार का इस लोक और परलोक संबंधी विपाक का कथन करते हुए उल्लेख किया गया है कि यह अल्प सुख एवं बहु दुःख वाला, अत्यंत भयंकर, पापरज से संयुक्त, बड़ा ही दारुण एवं कठोर, असाताजनक, अनुगत, दुरन्त और नाना प्रकार के दुःखों का दाता है, जिसका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं है। इस पर विजय के लिए उत्कट साधना की आवश्यकता है।

पंचम अध्ययन–पंचम आस्रव द्वार 'परिग्रह'

इसके अंतर्गत चल, अचल तथा मिश्र परिग्रह के स्वरूप को विस्तार से प्रकट करते हुए वृक्ष के रूपक के माध्यम से वर्णन किया है। इसमें बताया है कि विविध प्रकार की मणियों, रत्नों, स्वर्णाभूषणों आदि अचेतन; हाथी, अश्व, दास, दासी, नौकर, चाकर आदि चेतन; रथ पालकी आदि सवारियाँ, ग्राम नगरादि से युक्त सम्पूर्ण भरतक्षेत्र का यहाँ तक कि सम्पूर्ण पृथ्वी के अखण्ड साम्राज्य का उपभोग कर लेने पर भी तृष्णा शांत नहीं होती है, क्योंकि ''लाभ लोभ का वर्द्धक है'' अतः परिग्रह की वृद्धि करके जो संतोष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त करना चाहते हैं वे आग में घी डालकर उसे बुझाने के सदृश असफल प्रयास करते हैं। संतोष-प्राप्ति का एकमात्र उपाय है—शौच, निर्लोभता व मुनि धर्म का आचरण। जो संतोषवृत्ति को पुष्ट कर तृष्णा, लोभ, लालसा से विरत हो जाते हैं, वे ही परिग्रह रूप राक्षस से मुक्ति पा सकते हैं। ऐसा परिग्रह स्वरूप सूत्र में प्रकट किया गया है।

इसके पश्चात् इसमें परिग्रह के ३० गुण निष्पन्न नाम हैं। परिग्रह के पाश में बंधने वाले देवगण, मनुष्य, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, मांडलिक, तलवर, श्रेष्ठि, सेनापति आदि का वर्णन है। परिग्रह वृद्धि के लिए ही पुरुष द्वारा ७२ व महिलाओं द्वारा ६४ कला का शिक्षण प्राप्त किया जाता है। इसी के लिए हिंसा, झूठ, चोरी आदि दुष्कर्म तथा भूख, प्यास, बन्धन, अपमान आदि संक्लेश सहे जाते हैं। परिग्रह केवल संक्लेश का कारण ही नहीं अपितु ''सव्वदुक्ख संनिलयणं'' अर्थात् समस्त दुःखों का घर है। उक्त बिन्दुओं के अन्तर्गत परिग्रह का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

अंत में ''परिग्रह पाप का कटु फल'' के अंतर्गत प्रकट किया है कि परिग्रह में आसक्त प्राणी परलोक और इस लोक में नष्ट-भ्रष्ट होते हैं, अज्ञान अंधकार में प्रविष्ट होते हैं, तीव्र मोहनीय कर्म के उदय से लोभ के वश में पड़े हुए प्राणी त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक व अपर्याप्तक अवस्थाओं वाले चार गति रूप भव कानन में परिभ्रमण करते हैं। इसका फल विपाक, अल्पसुख व बहुदुःख वाला, महान् भय से परिपूर्ण, गाढ़े कर्मबंध का कारण, दारुण, कठोर, असाता का हेतु और मोक्ष मार्ग रूप निर्लोभता के लिए अर्गला सदृश है। इसका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं होता है।

आस्रव द्वार का उपसंहार– इसका उपसंहार अंतिम ५ गाथाओं में निरूपित है जिसका भाव इस प्रकार है– ''इन पाँचों आस्रवों के निमित्त से जीव प्रति समय कर्म रूपी रज का संचय करके चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं। जो पुण्य हीन प्राणी धर्म का श्रवण नहीं करते तथा श्रवण करके भी आचरण में प्रमाद करते हैं, वे अनंत काल तक जन्म-मरण करते रहेंगे। ऐसा भगवान ने फरमाया है।''

द्वितीय श्रुत-स्कंध

प्रथम अध्ययन–प्रथम संवर द्वार 'अहिंसा'

इस अध्ययन के अन्तर्गत सर्वप्रथम संवर द्वारों की महिमा का वर्णन है। इसमें बताया है कि ये व्रत समस्त लोक हितकारी, तप और संयम रूप हैं, जिनमें शील व उत्तम गुण रहे हुए हैं। ये मुक्ति प्रदाता, सभी तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट, कर्म रज के विदारक, जन्म-मरण के अंतकर्ता, दुःखों से बचाने व सुखों में प्रवृत्त करने वाले, कायरों के लिए दुस्तर, सत्पुरुषों द्वारा सेवित हैं तथा मोक्ष के मार्ग हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके पश्चात् इस संवर द्वार में अहिंसा को प्रथम धर्म बताते हुए कहा है कि यह देव, मनुष्य और असुरादि लोकों में दीप के समान प्रकाशक और सबकी शरण एवं आधारभूत है। अहिंसा के गुण निष्पन्न साठ नामों का उल्लेख करने के साथ इसे जीव मात्र के लिए क्षेमंकरी बताया है, क्योंकि अहिंसा भगवती अपरिमित ज्ञानी–त्रिलोक पूज्य तीर्थंकरों द्वारा सुदृष्ट, अवधि ज्ञानियों द्वारा ज्ञात, पूर्वधारियों द्वारा पठित, ज्ञान-तप-लब्धिधर साधकों द्वारा अनुपालित और उपदिष्ट है। इसी के साथ प्रकट किया है कि इसके रक्षण हेतु आहार शुद्धि परमावश्यक है। अतः गृहीत आहार निर्दोष विधिपूर्वक नवकोटि परिशुद्ध, उद्गम उत्पादन व एषणा दोष से रहित होना चाहिए। अहिंसा व्रत की रक्षार्थ ५ भावनाओं का वर्णन भी उपलब्ध है। इसके अंतर्गत ईर्या समिति, मनः समिति, भाषा समिति, एषणा समिति और आदान-निक्षेपणा समिति के पालन एवं 'धिइमया मइमया' अर्थात् धैर्य और विवेक का पालन अहिंसा साधना के लिए परमावश्यक होने का सूत्रकार द्वारा उल्लेख किया गया है।

अध्ययन का उपसंहार करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं कि इस संवर द्वार को प्रत्येक मुनिजन को उपयोग पूर्वक पाँच भावनाओं सहित जीवन पर्यन्त पालन करना चाहिए। पालन में यदि परीषह और उपसर्ग आयें तो धैर्यपूर्वक सह लेना चाहिए, क्योंकि यह नवीन कर्मों के आस्रव को रोकता है। अर्हन्त भगवंतों ने स्वयं इसे जीवन में उतार कर ही साधक को धारण करने, सेवन करने का उपदेश दिया है। भ. महावीर ने इसकी प्रशंसा की है तथा देव, मानुषादि की परिषदा में देशना की है अतः यह धर्म द्वार प्रमाण प्रतिष्ठित है और मंगलमय है।

द्वितीय अध्ययन– द्वितीय संवर द्वार 'सत्य'

इस अध्ययन में सर्वप्रथम सत्य के स्वरूप का निरूपण करते हुए सत्य की महिमा का वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत सदोष सत्य का त्याग और बोलने योग्य वचनों का स्वरूप प्रदर्शित किया गया है। सत्य सभी के लिए हितकर, मितकर, व्रतरूप और सर्वज्ञों द्वारा देखा और परखा गया होने से शंका रहित है। सत्यसेवी ही सच्चा तपस्वी है, इसे स्वर्ग व अपवर्ग का मार्ग कहा है। घोर संकट में पड़े हुए मनुष्य की 'सत्य' देवता की तरह रक्षा करता है। सत्यनिष्ठ को आग जला नहीं सकती, न वह समुद्र में डूबता है। वह भीषण विपत्तियों से भी सहज में ही छुटकारा पा लेता है। सत्य सभी के लिए अर्चनीय, पूजनीय, आराधनीय माना गया है। सत्य को महासागर से भी अधिक गंभीर, मेरू से अधिक स्थिर, चन्द्र से अधिक सौम्य एवं निर्मल, सूर्य से अधिक तेजपुंज उपमित किया है। वर्जनीय सत्य के भी ११ रूप प्रदर्शित किये हैं। सूत्र में १० प्रकार के सत्य, १२ प्रकार की भाषा और सोलह प्रकार के वचनों का अंकन हैं। सत्य धर्म के रक्षणार्थ भी ५ भावनाओं अनुवीचि भाषण (अक्रोध या क्रोधनिग्रह), निर्लोभता, निर्भयता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा धैर्य और मौन भावना (हास्य त्याग) का निरूपण उपलब्ध है।

इस सत्य महाव्रत को जो मुनिजन उक्त पाँच भावनाओं सहित पालते हैं उनके अशुभ अध्यवसाय रुक जाते हैं व नवीन कर्मों का बंध नहीं होता है। यह मंगलमय, निर्दोष और बाधा रहित है, अतः इसे धारण कर प्रत्येक मनुष्य को अपना जीवन सफल बनाना चाहिए।

तृतीय अध्ययन–तृतीय संवर द्वार 'अचौर्य'

प्रस्तुत अध्ययन में तृतीय संवर द्वार का निरूपण करते हुए अस्तेय का स्वरूप प्रकट किया है। इसके अंतर्गत बताया है कि जीवन पर्यन्त तृण जैसे तुच्छ पदार्थ को भी बिना पूछे ग्रहण न करना एक महती साधना है। इस व्रत के प्रभाव से मन अत्यंत संयमशील बन जाता है, परधन ग्रहण की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। ज्ञानी भगवंतों ने इसे उपादेय कहा है। यह आस्रव-निरोध का हेतु एवं निर्भयता-प्रदाता है। इसे साधुजनों का धर्माचरण माना है। अनेक गुणों का जनक होने से इसके धारण व पालन से इस लोक और परलोक में उपकार होने का ग्रंथकार द्वारा उल्लेख किया गया है।

इसी के साथ अस्तेय के आराधक कौन नहीं, का परिचय देते हुए तपःस्तेन, वचःस्तेन, रूपस्तेन, आचारस्तेन, भावस्तेन का उल्लेख किया है, साथ ही अस्तेय का आराधक कौन, के अंतर्गत बताया है कि जो वस्त्र, पात्रादि, धर्मोपकरण, आहार-पानी आदि के संग्रहण व संविभाग में कुशल हो जो बाल, रुग्ण, वृद्ध, तपस्वी, प्रवर्तक, आचार्य, उपाध्याय, साधु, कुल, गण व संघ की प्रसन्नता के लिए १० प्रकार की सेवा करने वाला हो व निर्जरा का अभिलाषी हो तथा निषिद्ध आचरणों से सदा दूर रहता हो वह अस्तेय का आराधक होता है। इसके पश्चात् अचौर्यव्रत की आराधना का फल एवं इसके रक्षणार्थ ५ भावनाओं–विविक्तवसति (निर्दोष उपाश्रय), अनुज्ञात संस्तारक (निर्दोष संस्तारक), शय्या परिकर्मवर्जन, अनुज्ञात भक्तादि, साधर्मिक विनय आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन उपलब्ध है।

इस धर्म द्वार को जो मुनिजन तीन करण, तीन योग से जीवनपर्यन्त पालते हैं उनके अशुभ अध्यवसाय रुक जाते हैं, नवीन कर्मों का बंधन नहीं होता, संचित कर्मों की निर्जरा होती रहती है। समस्त अरिहंत भगवंतों ने इसका पालन किया है। अतः मंगलमय है।

चतुर्थ अध्ययन– चतुर्थ संवर द्वार 'ब्रह्मचर्य'

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य की महिमा का गान एवं उसके स्वरूप का निरूपण किया है। आर्य सुधर्मा स्वामी ने इसकी महत्ता को प्रकट करते हुए कथन किया है कि ब्रह्मचर्य तपों, नियमों, ज्ञान–दर्शन–चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है। यह हिमवान पर्वत से भी महान और तेजवान है, गंभीर है, मनुष्य के अंतःकरण को स्थिर करने वाला, साधुजनों द्वारा आसेवित और मोक्ष का मार्ग है, उत्तम गुणों वाला व सुख रूप है, सर्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार के उपद्रवों से रहित, अचल अक्षय पद प्रदान करने वाला, उत्तम मुनियों द्वारा आचरित और उपदिष्ट है। कल्याण का कारण, कुमारादि अवस्थाओं में भी विशुद्ध रूप से आराधित व पालित है, शंका रहित है। निर्भीकता प्रदाता, चित्त की शांति का स्थल और अविचल है। तप और संयम का मूल आधार, पाँच महाव्रतों में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण तथा पाँच समिति—तीन गुप्ति से रक्षित है। दुर्गति के मार्ग को अवरुद्ध करने एवं सद्गति के मार्ग को प्रशस्त करने वाला और लोक में उत्तम बताया गया है।

इस व्रत को कमलों से सुशोभित तालाब से उपमित एवं पाल के समान धर्म की रक्षा करने वाला बताया है। विशाल वृक्ष के स्कंध के समान यह धर्म का आधार रूप एवं अनेक निर्मल गुणों से युक्त है। इसके भंग होने पर विनय, शील, तप आदि गुणों का समूह फूटे घड़े की तरह संभग्न, आटे की तरह चूर्ण, तोड़ी हुई लकड़ी की तरह खण्डित एवं अग्नि द्वारा जलकर बिखरे काष्ठ के समान विनष्ट हो जाता है— इस प्रकार ब्रह्मचर्य का माहात्म्य प्रकट करते हुए अंत में 'वह ब्रह्मचर्य भगवान है' इस प्रकार गुण उत्कीर्तन द्वारा स्वयं वीतराग भगवंतों ने ब्रह्मचर्य व्रत के महिमा मण्डित होने का प्रस्तुत सूत्र में उल्लेख किया है। इसी के साथ ब्रह्मचर्य आराधना का फल, ब्रह्मचारी के आचरणीय और अनाचरणीय का निरूपण, ब्रह्मचर्य-विघातक निमित्त एवं ब्रह्मचर्यरक्षक नियमों के वर्णन के साथ, ब्रह्मचर्य रक्षक ५ भावनाओं यथा— विविक्त शयनासन, स्त्रीकथा-वर्जन, स्त्रीरूप-निरीक्षण वर्जन, पूर्वभोग चिंतन-त्याग और प्रणीत भोजन-वर्जन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

जो मुनिजन इसको तीनों योगों से शुद्धिपूर्वक पाँच भावनाओं सहित मरण पर्यन्त पालते हैं उनके अशुभ अध्यवसाय रुक जाते हैं, नवीन पाप कर्मों का बंध बंद हो जाता है, संचित कर्मों की निर्जरा होने लगती है। समस्त अरिहंत भगवंतों ने इसका पालन किया है, उन्हीं के कथनानुसार भ. महावीर ने भी इसका कथन किया है।

पंचम अध्ययन—पंचम संवर द्वार 'परिग्रह त्याग'

प्रस्तुत अध्ययन में सूत्रकार ने अपरिग्रही श्रमण का स्वरूप प्रकट करते हुए कहा कि जो मूर्च्छा—ममत्व भाव से रहित है, इन्द्रिय संवर और कषाय संवर से युक्त है एवं आरंभ—परिग्रह तथा क्रोध, मान, माया, लोभ से रहित है वही श्रमण होता है। जो जिनेश्वर द्वारा प्ररूपित शाश्वत सत्य है, उसमें शंका—कांक्षा रहित होकर हिंसादि से निवृत्ति करनी चाहिए। इसी प्रकार निदान रहित होकर, अभिमान से दूर रहकर निर्लोभ होकर, मूढ़ता त्याग कर जो अपने मन, वचन और काय को संवृत करता हुआ श्रद्धा करता है वही साधु है। इस प्रकार साधु का स्वरूप निरूपण करने के पश्चात् इस संवर द्वार को धर्मवृक्ष का रूपक दिया है। इसमें साधुओं को खाद्य पदार्थों का संचय कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं रखने का निर्देश करते हुए आहार संबंधी दोषों का भी नामोल्लेख किया गया है। कल्पनीय भिक्षा के अन्तर्गत नव कोटि विशुद्ध आहार ग्रहण करने के कारणों एवं उपकरण आदि की सजगता का निर्देश किया है। निर्ग्रन्थों के आंतरिक स्वरूप एवं निर्ग्रंथों की ३१ उपमाओं का निरूपण भी इसमें किया गया है। अपरिग्रह व्रत के रक्षणार्थ ५ भावनाओं—श्रोत्रेन्द्रिय संयम, चक्षुरिन्द्रिय संयम, घ्राणेन्द्रिय संयम, रसनेन्द्रिय संयम और स्पर्शनेन्द्रिय संयम का सविस्तार वर्णन करते हुए इनके विषय विकारों से बचने का निर्देश किया है।

अंत में सूत्रकार ने कथन किया है कि पाँचों इन्द्रियों के संवर से सम्पन्न और मन, वचन, काय से गुप्त होकर ही साधु को धर्म का आचरण करना चाहिए।

संवर द्वार का उपसंहार करते हुए सूत्रकार ने फरमाया है कि जो साधु पूर्वोक्त पच्चीस भावनाओं और ज्ञान, दर्शन से युक्त, कषाय और इन्द्रिय संवर से संवृत्त, प्राप्त संयम-योग का प्रयत्नपूर्वक पालन और अप्राप्त संयम-योग की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हुए सर्वथा विशुद्ध श्रद्धावान होता है, वह इन संवरों की आराधना करके मुक्त होता है। इस प्रकार की विषय सामग्री का निरूपण प्रश्नव्याकरण सूत्र के अंतर्गत आर्य सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी के समक्ष प्रकट किया है।

— व्याख्याता, अलीगढ़, जिला—टोंक (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org